ॐ

तावद्गर्जन्ति शास्त्राणि जम्बुका विपने यथा ।
न गर्जति महाशक्तिर्यावद्वेदान्त केसरी ॥

* ज्ञान धर्मोपदेश *

प्रकाशक ।

भूमानन्द ब्रह्मचारी

श्री भगवद्भक्ति आश्रम रामपुरा (रेवाड़ी)

प्रथमावृत्ति २००० | सन् १९२६ | मूल्य ।।।)

ओ३म्

* ज्ञान धर्मोपदेश *

मङ्गलाचरण ।

श्री गुरु परमानन्दं वन्दे स्वानन्द विग्रहम् ।
यस्य सानिध्य मात्रेण चिदानन्दायते तनुः ॥
सत्य महं गम्भीर काव्येन सत्यं जाते नाऽस्मि जातवेदा
नमे दासो नमे आर्यो महीत्वा व्रतं मीमाय यदहं
धरिष्ये ॥ १ ॥

भगवान् कहते हैं हे जीवो मैं सत्य स्वरूप हा गम्भीर सत्य विद्या के प्रकट करने से जातवेदा हूं मैं किसी दास तथा आर्य्य का पक्ष पात नहीं करता हूं जो मेरी आज्ञा को मानेगा उसी का मैं उद्धार करूंगा ॥ १ ॥

सुविज्ञानं विचिकितुषे जनाय सच्चा सच्च वचसी

पश प्रधाते । तयोर्यत् सत्य मवति हन्त्यसत् ॥ २ ॥

मनुष्य ज्ञान के लिये दो प्रकार की बाणी सुनने में आती है सत्य और झूंठ और दोनों ही मनुष्य पर अपना अपना प्रभाव डालती हैं इन में जो सत्य है वह जीव की जन्म मरण से रक्षा करती है और दूसरी असत् जन्म मरण रूपी दुःख से इस जीव का नाश कर देती है ॥ २ ॥

सहृदयं सां मनस्य मद्वेषं कृणोमि वः ।
अन्योऽन्यमभिहर्यंत वत्सं जातमिवाघन्या ॥ ३ ॥

"वः सहृदयं सां मनस्यं स अद्वेषं च कृणोमि" तुम्हारे अंदर सहृदयता मन की शुद्धता और अद्वेष को स्थापित करता हूं । "अघन्या जातं वत्सं इव-अन्यं ऽन्यमभिहर्यंत" तुम एक दूसरे से उसी प्रकार प्रीति पूर्वक व्यवहार करो जैसे नये उत्पन्न हुये २ अपने बछड़े से गऊ प्यार करती है मनुष्यों को सहृदय अर्थात् अनुभव शील हृदय वाला होना चाहिये अपना मन सुसंस्कृत करके उत्तम बनाना चाहिये सब

मनुष्यों को परस्पर द्वेष न करना चाहिये गौ अवध्य है उसे कभी न मारना चाहिये ॥

अनुव्रतः पितुः पित्रो मात्रा भवतुसम्मनाः
जायापत्ये मधुमतीं बाचं वदतु शान्तिवाम् ॥

"पुत्रः पितुः अनुव्रतः भवतु" पुत्र पिता का अनुव्रत हो 'पुत्रः मातृ सम्मना भवतु, माता के कारण पुत्र शुद्ध मन वाला हो।

"जायापत्ये मधुमतिं शांति वं वाचं वदतु" पत्नी अपने पति से मधुर और शान्ति कारी बाणी बोले पुत्र को उचित है कि वह अपने पिता के आरम्भ किये हुवे शुभ कर्मों को पूर्ण करे" माता के उत्तम होने से ही पुत्र शुद्ध मन वाला हो सकता है अतः माता को शिक्षिता तथा विदुषी होना चाहिये पत्नी को उचित है कि अपने पति से मधुर और शांति करने वाली वाणी द्वारा बात चीत करे ॥

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसार मुत स्वसा।
सम्यं चसव्रतं भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥

"भ्राता भ्रातरं माद्विक्षन्" भाई से भाई द्वेष न करे 'उत्स्वसा स्वसारं मा द्विक्षत्, बहन से बहन द्वेष न करे "सम्यं चस व्रतं भूत्वा भद्रया वाचं वदत्" उत्तम और सव्रत होते हुये तुम परस्पर कल्याण कारी वाणी से बोलो भाइयों और बहनों में परस्पर द्वेष न होना चाहिये सब मनुष्यों को उचित है कि वे समान रीति से व्रतों का पालन अर्थात् कार्य करते हुए उत्तम बनें एक दूसरे के साथ बात चीत के समय उत्तम और कल्याण कारक वाणी बोलनी चाहिये ॥

येन देवा न वियन्त नो च विद्विषते मिथः
तत् कृणमो ब्रह्मवो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः ॥

"येन देवा न वियन्ति नो मिथः विद्विषते" जिस से विद्वान् लोग परस्पर विरोध और द्वेष न करें "तत् संज्ञानं ब्रह्मवः गृहे पुरुषेभ्यः कृणमः" ऐसा ऐक्योत्पादक ज्ञान तुम्हारे घर के मनुष्यों को देते हैं सब मनुष्यों को उचित है कि अपने परिवार में ग्राम में नगर में प्रांत में और राष्ट्र में ऐसे उत्तम ज्ञान का विस्तार

करें कि जिस से मनुष्यों में परस्पर विरोध भाव और द्वेष न बढ़ने पावे।

ज्यायस्वन्तः चित्तिनो मा वीयौष्ट सं राधयन्तः सधुराश्चरन्तः।

अन्योऽन्यस्मै वल्गू वदत एत सध्रीचीनान् वः सम्मनसः कृणोमि॥

हेज्यायस्वन्तः चित्तिनः सधुराः चरन्तः सं राधयन्तः यूयं मा वीयौष्ट—हे श्रेष्ट मनुष्यो और हे बुद्धिमान् लोगो एकत्र हो कर अच्छी तरह कार्यों को सिद्ध करते हुये तुम पृथक मत होओ 'अन्योऽन्यस्मै वलगू वदत एतत्—एक दूसरे के साथ अच्छी वाणी में बात चीत करते हुये उन्नति की ओर चलो। 'सध्री चीनान् व सम्मनसः कृणोमि, तुम इकट्ठे काम करने वालों के मन को पवित्र तथा सुसंस्कृत बनाता हूं। यदि श्रेठ और बुद्धिमान पुरुष मिल कर इकट्ठा कार्य करें तो अवश्य कार्य सिद्धि होती है इकट्ठा कार्य करते हुये परस्पर द्वेष उत्पन्न होने की अधिक सम्भावना रहती

है। अतः मनुष्यों को विशेष ध्यान रखना चाहिये कि वे एकदूसरे के साथ बात चीत के समय मधुर वाणी का प्रयोग करें क्योंकि थोड़ी सी वाणी की कटुता से कई बार बड़े २ अनर्थ हो जाते हैं अपने मनों को उत्तम और सुसंस्कृत बनाना चाहिये तभी कार्य सिद्धि होगी।

समानी प्रपा सहवो अन्नभागः समाने योक्त्रे सहवो युनज्मि।

सम्यं चो अग्निं सपर्यतारा नाभिमिवा भितः॥

'वः प्रपा समानी--तुम्हारा पानी पीने का स्थान समान हो "वः अन्नभागः समानः" तुम्हारा अन्न का भाग समान हो 'वःसमाने योक्त्रे सह युनज्मि, तुम्हें एक ही धुरा में जोड़ता हुं 'नाभिं अभितः अरा-इव-जिस प्रकार एक नाभि के चारों ओर अरे लगे होते हैं। 'सम्यं च अग्निं सपर्यतः, इसप्रकार इकट्ठे तुम ईश्वर की पूजा करो सब मनुष्यों का खाना पीना समान होना चाहिये ऐश्वर्योपभोग्य पदार्थों की

विषय प्राप्ति से परस्पर द्वेष होता है इस लिये एकता की इच्छा करने वाले सब मनुष्यों के उपभोग्य पदार्थ समान होने चाहियें परमात्मा ने सब मनुष्यों को एक महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिये एक धुरे में जोड़ा है अतः मनुष्यों को भी चाहिये कि वे अपने आप को मनुष्य समाज का एक अंग समझ कर मनुष्य मात्र की उन्नति के लिये सर्वदा प्रयत्न करें यदि किसी मनुष्य से अन्य कोई अच्छा कार्य न हो सके तो उस को उचित है कि वह सर्वदा मन से अच्छा विचार करे सब मनुष्य मिल कर एक ही प्रकाश स्वरूप परमात्मा की पूजा करें सत्य ज्ञान का विचार करते हुये उसी का सब लोगों को प्रचार करें ॥

सं जानीध्वं सं पृच्यध्वं सं वो मनांसि जानताम्
देवाभागं यथा पूर्वे सं जानाना उपासते ॥

'संजानीध्वं–उत्तम ज्ञान को प्राप्त करो 'संपृच्यध्वं, एकदूसरे के साथ मैत्री करो 'वः मनांसि संजानताम् अपने मन को सुसंस्कृत उत्तम ज्ञान से शुद्ध करो यथा-

पूर्वे 'सं जानानाः देवा भागं उपासते, जिस प्रकार देव लोग परमात्मा की उपासना करते हैं उसी प्रकार तुम भी करो ।

समानो मंत्रः समितिः समानि समानं व्रतं सहचित्त मेषाम् ।

समानेन वो हविषा जुहोमि समानं चेतो अभि सं विशध्वम् ॥

'समानो मंत्र, तुम्हारे विचार समान अर्थात द्वेष रहित हों 'समितिः समानि, तुम्हारी सभा में एकता हो और विरोध का अभाव हो 'व्रतं समानं तुम्हारा व्रत अर्थात कार्य समान हो 'एषां सहचित्तं, तुम्हारा चित्त समान हो 'वः समानेन हविषा जुहोमि, मैं तुम्हें समान अन्न देता हूं अर्थात परमेश्वर के पास किसी का पक्षपात नहीं होगा यह ध्यान में रख कर मनुष्य निष्पक्ष पात होकर अपना व्यवहार करें 'समानं चेतः अभिसंविशध्वं, समान एक चित्त हो कर अपने कार्य में लगे रहो ।

समानि व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥

वः आकूतिः समानि तुम्हारा अभिप्राय समान हो वः हृदयानि समानि तुम्हारा हृदय समान अर्थात द्वेष रहित हो वः मनः समान मस्तु तुम्हारे मनों में ऐसी एकता हो 'यथावः सुसहासति जिस से तुम्हारे सब कार्य अच्छी तरह हो सकें ॥

वेदांत सिद्धांत

ब्रह्मैवाह मिदं जगच्च सकलँ चिन्मात्र विस्तारितँ ।
सर्वं चैतद्विद्यया त्रिगुणया शेषँ मया कल्पितम् ॥
इत्थँ यस्य दृढ़ा मतिः सुखतरे नित्ये परे निर्मले ।
चाण्डाळोऽस्तु सतु द्विजोस्तु गुरुरित्येषा मनीषा मम ॥ १ ॥
एषोह देवः प्रदिशोनु सर्वाः पूर्वोह जातः सौ गर्भे अन्तः ।
स एव जातः स जनिष्य माणः प्रत्यङ्ग जनास्तिष्ठति सर्व तो मुखः ॥

जो कुछ यह नाना रूप प्रतीत होरहा है यह वस्तुतः एक है वास्तव में एक ही परमार्थ सत्ता असली हस्ती है जिसको ब्रह्म व परमात्मा कहतेहैं वह शुद्ध चैतन्य व शुद्ध ज्ञान है अर्थात् वह जानने वाला नहीं किन्तु स्वयं ज्ञान है वह निर्गुण है वह आप ही है जो कुछ है उस में और कुछ नहीं इसी लिये व निर्गुण व निर्विशेष है पर यदि वह सत् हस्ति एक है और कुछ नहीं तब यह सारा प्रपंच कहां से आ गया जिस को हम अपनी चारों ओर देखते हैं

और जिस में हम अपनी स्वयं एक अलग सत्ता रखते हैं तो उत्तर यह है कि ब्रह्म के साथ अनादि से एक शक्ति है जिस को माया व अविद्या कहते हैं यह सारा प्रपंच उसी से दिखलाया जाता है यह शक्ति न सत् कहलाती है क्योंकि सत् केवल ब्रह्म है न असत् क्योंकि किसी न किसी भांति इस प्रपंच को प्रकट कर देती है वस्तुतः यह इस भ्रान्ति का अनिर्वचनीय कारण है जिस से हम अपने चारों ओर जड़ चैतन्य की विविध सृष्टि देख रहे हैं ब्रह्म इस शक्ति के द्वारा इस प्रकार जड़ चैतन्य की अनेक सृष्टि को दिखला देता है जैसे कोई मायावी इन्द्रजालिक अपनी माया शक्ति से अनेक प्रकार की जड़ चेतन वस्तु प्रकट कर दिखला देता है जो वस्तुतः भ्रान्ति मात्र होते हैं। शक्ति रूप से जहां तक माया का सम्बन्ध ब्रह्म के साथ होता है वहां तक हम ब्रह्म को जगत का उपादान कारण कह सकते हैं अर्थात स्वरूप से निमित्त और माया स्वरूप से उपादान। परन्तु माया ब्रह्म की ही अनिर्वचनीय शक्ति है उस से भिन्न

पदार्थ नहीं है। माया शबल ब्रह्म ही जगत का अभिन्न निमित्तोपादान कारण है माया के सम्बन्ध से प्रायः ब्रह्म को ईश्वर कहते हैं माया ईश्वर के आधीन हो कर क्रमशः इन भिन्न २ रूपों में परिणत हुई है जिन-का समुदाय यह जगत है और जो अपने २ प्रति नि-यत नाम और रूप से निखेरे जाते हैं भूत भौतिक शरीर और इन्द्रियें यह सब उसी का परिणाम हैं यह सारे शरीर जो एक दूसरे से भिन्न २ हैं इन सब में एक ही अभिन्न ब्रह्म है जो माया कृत ज्ञान और कर्म के भेद से प्रति व्यक्ति भिन्न२ प्रतीत होता है वही जीव है जीव का परमार्थ रूप ब्रह्म है और वह एक अद्वितीय ब्रह्म है तथा प्रति शरीर ज्ञान और कर्म की भिन्न २ शक्तियों से एक जीव दूसरे से भिन्न किया जाता है यह शक्तियां माया का कार्य हैं इसी लिये मिथ्या हैं यह जगत इनहीं भिन्न२ जीवों से भरा हुआ है पर न यह जीव और न उसकी उपयोगी वस्तुयें परमार्थ सत् हैं क्योंकि यह दोनों माया से सम्बन्ध रखते हैं

माया से दिखलाये जाते हैं सो इसी लिये मिथ्या हैं इसी प्रकार यह सारा भेद मिथ्या है वस्तुतः नहीं और प्रतीत होता है। इसी मिथ्या दृष्टि ने अपना परमार्थ स्वरूप भुलाया हुआ है। अब यह भूला हुआ आत्मा माया से परे व माया के भी असली स्वरूप को जानता है इस का अपना परमार्थ स्वरूप इस माया के परदे से ढका हुआ है यह अपने आप को ब्रह्म समझने की जगह उन उपाधियों शरीर इन्द्रयों को अपना आप समझ रहा है जो माया का कार्य हैं इस प्रकार यह शरीर इन्द्रियों मन को ही अपना असली स्वरूप जान कर इन की सारी अवस्थाओं कोअपनी अवस्था मानता हुआ कहता है कि मैं मोटा हूं मैं दुबला हूं मैं अन्धा हूं मैं बहरा हूं मैं शोक में हूं मैं चिन्ता में हूं मेरा जन्म अमुक सम्वत में हुआ अब मैं बूढा हो गया हूं मैं रोगी हूं मैं मर जाऊंगा इत्यादि। सो यह आत्मा जो परमार्थतः शुद्ध ज्ञान स्वरूप है न कि जानने वाला और अनन्त है इस अध्यास के कारण यह एक

सीमा हद में आ जाता है अल्पज्ञ और अल्प शक्ति हो जाता है और कर्ता और भोक्ता बन जाता है अपने कर्मों द्वारा पुण्य और पाप का सञ्चय करता है और ईश्वर की मर्यादा में उन के शुभ अशुभ फल भोगता है जब तक यह रचना स्थिर रहती है यह भी बार बार जन्म ग्रहण करता है कर्म करता है और फल भोगता है। कल्प के अन्त में ईश्वर इस सारे प्रपंच का संहार कर लेते हैं अर्थात् यह सारा माया का कार्य अव्यक्त माया के रूप में वापिस आ जाता है तब यह सारे जीव करने भोगने से रहित हो जाते हैं मानो उतने काल के लिये गहरी नींद सो जाते हैं पर उनके कर्मों की वासना अब भी नष्ट नहीं होती है अतएव फिर नये शरीरों को धारण करते हैं जब कि ईश्वर फिर नये सिरे से सृष्टि को रचते हैं और इसी तरह वह आगे नये कल्पों में शरीरों को धरण करते चले जायेंगे जैसे कि वह अनादि काल से पहिले कल्पों में धारण करते चले आये हैं। इसी का नाम संसार है यह

संसार तब तक बना रहता हैं जब तक अज्ञान है । जब ज्ञानसे अज्ञान का नाश हो जाता है तब यह संसार निवृत्त हो जाता है पर यह उस एक के लिये निवृत्त हुवा भी दूसरे के लिये बना रहता है जो अभी अज्ञान की अवस्था में है यह मार्ग जिस से ज्ञान का उदय होता है वेद में बतलाया है वेद में दो मार्ग बतलाये हैं एक कर्म का और दूसरा ज्ञान का कर्म चाहे कैसा ही ऊंचे से ऊंचा क्यों न हो वह मनुष्य को संसार से पार नहीं लेजा सक्ता। उस का बड़े से बड़ा फल भी संसार के अन्तर्गत ही होता है दूसरा मार्ग ज्ञान काण्ड का है इसके दो भेद हैं एक वह भाग जिसमें ब्रह्म का ज्ञान वहां तक दिया है जहां तक उसका संबन्ध जगत से है इन भागों में ब्रह्म के भिन्न २ गुण वर्णन किये हैं अर्थात इनमें सगुण ब्रह्म ईश्वर हिरण्यगर्भ का उपदेश है और उपासना के लिये है इसी को उपसना कांण्ड कहते हैं दूसरा वह मार्ग है जिस में ब्रह्म का शुद्ध स्वरूप सारे गुणों से रहित निर्गुण वर्णन किया है वा जिस में जीवात्मा

को ब्रह्म रूप बतलाया है इन में से पहले ज्ञान सगुण ब्रह्म की उपासना से जीवात्मा मुक्ति नहीं पाता है किन्तु वह शरीर को छोड़ कर केवल ब्रह्म लोक में जाता है जहां वह एक अलग जीव के तौर पर बना रहता है यद्यपि उस की शक्ति और ज्ञान बहुत बढ़ जाते हैं अन्ततः वह निर्गुण ज्ञान को लाभ करता है और तब मुक्त हो जाता है दूसरे वह ज्ञनी जो ब्रह्म के शुद्ध स्वरूप को जानते हैं जो सारे गुणों से परे है और महा वाक्यों तत्वमस्यादि द्वारा जान लेते हैं कि आत्मा के परमार्थ स्वरूप और परमात्मा में कोई भेद नहीं है वह उसीक्षण परम मुक्ति लाभ करते हैं अर्थात् माया के प्रभाव से परे हो जाते हैं और अपने असली स्वरूप को पालते हैं जो केवल शुद्ध ब्रह्म है यह अद्वैत सिद्धान्त है जिसके विचार से जीवकृत कृत्य हो जाता है और उस के ज्ञान में ब्रह्म के व्यतिरिक्त कुछ नहीं रहता है यही मनुष्य जीवन का मुख्य उद्देश्य है इसी के लिये परमात्मा ने मनुष्य शरीर दिया है

बोलो प्रेम से सच्चिदानन्द सनातन ब्रह्मकी जय।

मैंने क्या किया।

चिर काल तक महात्माओं की सेवा से संतुष्ट हो कर भक्ति उनकी ही पर्ण कुटीर में निवास करती थी जब से वह अपने परम धाम को सिधारे भक्ति का पता नहीं लगता यद्यपि देश देशान्तरों में नगर नगर में घर घर में घाट बाट में ढूंढा परन्तु पता नहीं पाया सभाओं में समाजों में अखाड़ों में मठो में मन्दिरो में महोत्सव के समय तीर्थ तथा मेलों में भी ढूंढने में त्रुटि नहीं की किन्तु भेट नहीं हुई कभी कभी भक्ति के वेश धरे कितने ही कपट रूप धारि लोगों का साथ हुवा परन्तु लक्षण आदि से देखा गया तो यथार्थ में वह भक्ति नहीं थी जिज्ञासु प्रेमीयों से निवेदन किया जाता है कि यदि पता लगा सकें तो वे नित्य निकेतन को परमानन्द रूप अमूल्य रत्न पारितोषिक में पावेंगे शान्ति और मुक्ति

उन की परिचर्या में लगी रहेंगी मनुष्य को यह सो-
चना चाहिये विचारना चाहिये कि, मैनें क्या किया
एकान्त स्थान पर शान्ति सरोवर में यह तरङ्ग उठी
कि मैं कहां था कहां आगया आकर ही फिर क्या कि
-या यहां कैसे लाया किस प्रकार लाया और लाकरहि
फिर क्याकिया यहां आकर बहुत कुछ सुना बहुत कुछकहा
बहुतकुछ सोचा, परन्तु देख कर, सुन कर, और सोच ही
कर क्याकिया माता पिता पाये भाई बहन मिले, बन्धु बा
न्धव मिले धन जन सारीसम्पदा पाई पर यह सब पाकर
ही फिर क्या किया अनेक देशों में फिरा अनेक वस्तु देखी
अनेकभाषा सीखी अनेक मनुष्यों का संग किया अनेक
ग्रन्थ पढे, अनेक पन्थ चढे, अनेकों तर्क वितर्क में दिन
गंवाये पर अन्त में फिर क्या किया शरीर में बल आ
या इन्द्रियें कार्य करने लगीं, मन बुद्धि में प्रणय ज-
न्मा संशय सिद्धांत की प्रचण्ड द्वन्द्व हवा चलने लगी
विवेक विचार विषय विकार आदि के संग्राम में प्र-
वृत्त हुवा प्रवृत्ति निवृत्ति का झगड़ा होने लगा संसार

समुद्र में प्रलय का तूफान उठा किन्तु मैं ने फिर भी क्या किया । जिधर देखता हूं उधर सम्प्रदाई लोगों का विषम मत भेद और क्रिया भेद पाताहूं कोई राज नीति कोई समाजनीति कोई समर नीति कोई धर्म नीति को लेकर व्यस्त हो रहे हैं।कोई कहते हैं, कोई सुनते हैं, कोई समझाते हैं। कोई समझ कर चुप हो-रहे हैं कोई आन्दोलन करते हैं कोई शासन करते हैं कोई सिंहासन पर और कोई धरासन पर बैठे हैं कोई रोते हैं कोई हंसते हैं और कोई अवाक हो रहे हैं। अन्त में सब ही संसार सागर में बहे जा रहे हैं हाय फिर मैंने क्या किया। कोई ब्रह्मचर्य लेकर मुक्ति मार्ग की ओर बढ़ रहे हैं । कोई गृहस्थ हो कर स्त्री पुत्र बन्धु बान्धव के लालन पालन में लगे हैं कोई शा स्त्र पढ़कर देशान्तरों में धर्म प्रचार कररहे हैं । योगी तपस्वी परमात्मा के सानिध्य का अनुभव करके कृता र्थ हो रहे हैं। कोई भक्ति सरोवर के आनन्द सोरोज की शैय्या पर शयनकर रहे हैं परन्तु हाय मैं ने क्या

किया। मैं रक्त के तेज से नास्तिक हो कर कहता हूं भगवान् नहीं हैं। विषम विष के पान से विह्वल होकर कुसंग में पड़कर सरल चित्त वाले मनुष्यों को सांसारिक क्लेश और दुराचारी लोगों की उन्नति देख कर कहता हूं कि भगवान् नहीं हैं नाना भान्ति कि सांसारिक यन्त्रणाओं से दुःखित होकर कहताहूं कि भगवान् नहीं हैं। दूरात्मा दुराचारी लोगों को तत्काल ही दैवी दण्ड न मिला यह देख कर कहता हूं कि भगवान् नहीं हैं अपने पाप चक्षु से भगवान् को न देख कर कहता हूं भगवान् नहीं हैं परन्तु भगवान् की अनन्त सृष्टि रुष्ट हो कर वज्र नाद से तिरस्कार कर के मुझ से कहती है कि रे पापात्मन् तू सामान्य धूल का कण मात्र भी नहीं है तुझे क्या इतना साहस हो गया है जो तू कहता है कि भगवान् नहीं हैं। तू नहीं जानता कि समस्त ब्रह्माण्ड के अधिनायक भगवान् तेरे समान कोटान कोट जीवों को मुहूर्त्त भर में रचते और पल भर में प्रलय पयोधि के प्रवाह में निमग्न कर देते हैं उस

समय भय से कम्पित हो कर सोचने लगता हूं कि हाय मैंने क्या किया। तरु लता फल फूल आदि जिस की सत्ता की साक्षी देते हैं हिमालय मस्तक उठाकर जिस का यशोगान कर रहा है समुद्र जिस के दर्शन की अभिलाषा से पृथ्वी पर नृत्य कर रहा है चन्द्र सूर्य ग्रह नक्षत्र इत्यादि जिस का गुण गान करते हुवे घूम रहे हैं उसे मैं नहीं पहचान सका तो हाय मैं ने क्या किया श्री गुरु देव ने जिस को पहिचानने का उपदेश किया चतुर्दश भुवन जिस की खोज में लग रहे हैं भीतर बाहर आगे पीछे दशों दिशाओं में रहते हुए भी जिस को कोई नहीं देख सका उस अलख को जब नहीं लख सका तो हाय मैंने क्या किया विज्ञान की आलोचना करके समस्त वस्तुओं का परिचय पाया परन्तु मैं कौन हूं जब इसका परिचय नहीं पासका तो हाय मैंने क्या किया रह आदि शब्दों से जिस का निर्देश करता हूं उस का त्व भी विदित नहीं हुवा तो हाय मैंने यह शरीर धारण कर के ही क्या किया जिस का जगत है जिस

क़ा सर्वस्व है जिसका मैं हूं उसको सर्वस्व अर्पण न क़रके देहाभिमानी हो बैठा जिसके शासन के लिये यमराज काल दण्ड हाथमें लिये सामने खड़ा है हाय बिना सोचे बिचारे यह क्या क़िया जिस का भजन क़रने से भयभावना दूर भागती है जिस के चरणों में प्रणत होने से जन्म मरण की यन्त्रणा जीव का स्पर्श नहीं कर सक्ती उस सच्चिदानन्द स्वरूप को हृदय में स्थापन नहीं कर सका तो हाय मैंने यह दुर्लभ मानव शरीर पाकर ही क्या किया हे गुरु देव इस अज्ञानी शिष्य पर कृपा करो जब आत्म मन्त्र से इङ्गित किया है तो ऐसा उपदेश क़रो कि उस की पूर्ण सत्ता क़ो अपनी सत्ता में विसर्जन कर सकूं और यह नहीं हो सका तो फिर तुम्हारे चरणों में शरणागत हो क़र ही क्या किया हे गुरो हे जगत्गुरो हे प्रभो सब वस्तुओं के मूल में तुम्हारी सत्ता विद्यमान है अस्ति शब्द तुम्हारा ही ज्वलन्त आश्रय करके स्थिति क़रता है तुम अपनी सत्ता से जगत् का प्रक़ाश क़रते हो मेरी सत्ता क़ा दिखलाना

यदि तुम्हारी कृपा से अपने स्वरूप को नहीं समझ सका तो फिर तुम्हारे कल्पतरु के नीचे रह कर ही मैंने क्या किया इस प्रकार एकान्त में बैठ कर एकाग्र हो कर शुद्ध चित्त से अपने जीवन की आलोचना करो कि मैंने क्या किया ॥

श्यामाच्छबलं प्रपद्ये शबलाच्छ्यामं प्रपद्येऽश्व इव रोम णि विधूय पापं चन्द्र इव राहोर्मुखात्प्रमुच्य धूत्वा शरीरमकृतं कृतात्मा ब्रह्मलोकमभिसम्भवामी त्यभिसंभवामीति ॥

ब्रह्म का वर्णन दो प्रकार से किया जाता है, यथा द्वे वाव ब्रह्मणोरूपे मूर्त्तं चैवामूर्तं च ॥ बृह० ॥ एक उसके केवल स्वरूप का दूसरा उस के प्रकाश का इस जगत के अन्दर होता हुआ जगत से अलग जो उस का अपना स्वरूप है उस का वर्णन स्वरूप वर्णन है। इस रूप में उसे परब्रह्म, शुद्ध ब्रह्म, श्याम ब्रह्म, व निर्गुण कहते हैं। वह स्थूल, सूक्ष्म, सारे विश्व में परिपूर्ण है, और उस से परे भी है। केवल रूप, निर्पेक्ष निखेरे हुवे रूप में इस जगत से परे है इस का वर्णन प्रायः नेति २ शब्दों से होता है, यथाः—स एष नेति नेत्यात्माऽगृह्यो न ही गृह्यतेऽशीर्यो न हि शीर्यतेऽसङ्गो न हि सज्यते सितो न व्यथते न रिष्य-त्यभयं वै जनक प्राप्तोऽसीति ॥ बृह० ॥ और इस

जगत में भी परिपूर्ण हो रहा है वह इस जगत के अन्दर चुप चाप नहीं पड़ा हुवा है किन्तु इस सारे जगत के अन्दर समाया हुवा इस सारे जगत का अन्तर्यामी नियन्ता है। इस लिये इस जगत का एक एक अणु उस की महिमा को प्रकाशित कर रहा है। जिस तरह एक जीते जागते शरीर से जीवात्मा की महिमा भासती है उसी प्रकार इस जीते जागते जगत से सब जगह परमात्मा की महिमा भास रही है। सो इस तरह उस के रचे हुवे पदार्थों से उस की महिमा का प्रकाश उस का प्रकाश कहलाता है इस रूप में उसे अपर ब्रह्म, अवर ब्रह्म, सापेक्ष ब्रह्म, शबल ब्रह्म, व सगुण ब्रह्म कहते हैं। इस रूप में वह जगत के अंदर समाया हुआ है जगत के साथ मिला हुआ प्रतीत होता है जैसे अग्नि में लाल किया हुआ लोहा ठंडे लोहे से विलक्षण होता है, विलक्षण ही प्रतीत होता है, विलक्षण ही कार्य करता है, क्योंकि उस में एक अग्नि है जो कि ठंडे लोहे में नहीं है। अथवा एक सजीव

शरीर निर्जीव शरीर से विलक्षण होता है, विलक्षण प्रतीत होता है, विलक्षण ही कार्य करता है क्योंकि उस में एक आत्मा जीवात्मा है जो कि निर्जीव शरीर में नहीं है सो जैसे अग्नि से युक्त हो कर लोहा और जीवात्मा से युक्त हो कर शरीर एक विलक्षण रूप में आ जाता है सो स्पष्ट अग्नि और जीवात्मा के योग को प्रकाशित कर देता है ठीक इसी प्रकार यह जड़ जगत एक विलक्षण रूप में हुवा अपने साथ परमात्मा के योग को प्रकाशित कर रहा है और जैसे अग्नि का लोहे के साथ मिल कर प्रकाशित होना अग्नि का शबल स्वरुप रूप है इसी प्रकार ब्रह्म का इस जगत के साथ मिल कर प्रकाशित होना ब्रह्म का शबल रूप है यह अग्नि वायु सूर्यादि अलग २ भी अपने २ स्वरुप से उस की महिमा को दिखला रहे हैं और सारे के सारे मिल कर भी। इसी लिये शबल रूप उस का वर्णन दो प्रकार से है। व्यष्टि रूप से समष्टि रूप से। अग्नि में उसका प्रकाश है और सूर्य में भी, हमारी दृष्टि में

प्रेम चाहिये प्रियतम हमारा सर्वत्र विद्यमान है जहां चाहो देख लो चाहे केवल अग्नि में देखो अथवा केवल सूर्य में और चाहे किसी और ही दिव्य पदार्थ में। इस रूप में भिन्न २ महिमा को ले कर नाम भी भिन्न भिन्न हो जाते हैं। जैसे कि जीवात्मा की जो महिमा नेत्र से प्रकाशित होती है उस महिमा को लेकर जीवात्मा को दृष्टा कहते हैं और जो श्रोत्र से प्रकाशित होती है उस को ले कर श्रोता इसी प्रकार परमात्मा की जो महिमा उदय होते हुवे सूर्य से प्रकाशित होती है उस को ले कर उसे सविता और जो बिजली से प्रकाशित होती है उस को ले कर उस को इन्द्र कहते हैं जो वस्तुतः एकही परम देव अलग अलग दिव्य शक्तियों से अलग २ प्रकाशित होता है जैसे यजुर्वेद के ३२ वीं अध्याय के आरम्भ में यह मंत्र कहा है।

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तचन्द्रमा।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः॥

और भी कहा है "यो देवानां नामधा एक एव" जो परम देव सब देवताओं के नाम धारण करने वाला एक ही है समष्टि रूप में उस का वर्णन तीन प्रकार है विराट् ब्रह्मा और ईश्वर। इस स्थूल विश्व में एक साथ उस की महिमा का वर्णन विराट् का वर्णन है। यथाः—अग्निर्मूर्द्धा चक्षुषी चन्द्र सूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग्विवृतोश्च वेदाः वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्व भूतान्तरात्मा ॥ मुण्डक ॥ द्यौ उस का शिर है, सूर्य और चन्द्र नेत्र है, दिशायें श्रोत्र हैं, वेद वाणि है, वायु प्राण है और पृथ्वी चरण है, इत्यादि विराट् को ही विष्णु कहते हैं। हमारे इस स्थूल शरीर का जीवन कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय, मन बुद्धि, और प्राण हैं। यही कर्म ज्ञान और जीवन की शक्तियां हैं। इनहीं शक्तियों के द्वारा यह स्थूल शरीर जाग्रत रहता है जैसे यह एक व्यवस्था है इसी तरह यह सारा ही स्थूल जगत इनहीं शक्तियों से जीवित जाग्रत रहता है यह इस सारे स्थूल जगत

के अन्दर सूक्ष्म रूप से व्याप्त हो कर इस का जीवन है। यह सूक्ष्म शक्तियां भी उसी की महिमा को प्रकाशित करती हैं जिस की महिमा को स्थूल जगत प्रकाशित करता है सो इस सारे सूक्ष्म जगत में उस की महिमा का वर्णन ब्रह्म का वर्णन है जैसा ब्राह्मण में कहा है "मनो वै ब्रह्मा" इस रूप में उसे हिरण्य गर्भ और परमेष्ठी भी कहते हैं पर यह सूक्ष्म जगत भी एक कार्य है इस का कारण इस से भी सूक्ष्म इस से परे एक और है जिस में यह सारा ओत प्रोत हो रहा है उसी को प्रकृति या माया कहते हैं इस प्रकृति के नियन्ता भी वही परमात्मा हैं यथा उपनिषदि। मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्। तस्यावयवभू तैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत ॥ जो पूर्वोक्त स्थूल और सूक्ष्म जगत् के नियन्ता हैं यह प्रकृति भी उसी की महिमा को प्रकाशित करती है। इस सारी प्रकृति में उसकी महिमा का वर्णन ईश्वर का वर्णन है। यह सब उसके वर्णन का प्रकार मात्र है, पर जिसका यह

वर्णन है वह उस सारी अवस्थाओं में एक है। वही परब्रह्म है, वही ईश्वर है वही ब्रह्मा है, वही विराट् है, और वही इन्द्रादि देवता हैं, वही जीव मन इन्द्रिय में तू वही सब कुछ है। यथा:—"एकमेवा द्वितीयं नेह नानाऽस्ति किंचन"

वेद कह रहा है वह एक ही अपनी अप्रमेय और अचिन्त्य शक्ति के प्रभाव से इस प्रकार वर्णन किया गया है कि जैसे अनेक हैं। जिस की महिमा एक एक अणु से अलग २ प्रकाशित हो रही है। जिस की महिमा सारे स्थूल सूक्ष्म जगत् और मूल प्रकृति से भी झलक रही है, उस की महिमा का वर्णन इस रीति से होसक्ता है कि उसके वर्णन में एक २ अणु से उसकी महिमा चमके, और स्थूल सूक्ष्म तथा मूल प्रकृति से भी चमके, क्यों कि वह जो सारी रचना में एक बसा हुआ है उस एक को सारी रचना मिलकर ही पुरा वर्णन कर सकती हैं। और वह उन सारी रचनाओं में रहकर भी इससे अलग है और इससे परे भी है इसलिये वह अपने अ-

लग स्वरूप में भी वर्णन किया गया है। यही उस का पूरा वर्णन है उस के जानने का प्रकार भी यही है क पहले हम स्थूल व्यष्टी में उसकी महिमा को अनुभव करते हैं फिर स्थूल समष्टी में और शुद्ध हुवे चित्त के द्वारा स्थूल के अन्दर प्रवेश करके सूक्ष्म में तत्पश्चात् उससे भी आगे बढ़ कर मूल प्रकृति में उसको महिमा को देखते हैं और तब उससे परे इस सारी महिमा के योनि भूत चश्मे ब्रह्म तत्व को देखते हैं चित्त शबल स्वरूप तक ही पहुंचता है इससे परे ब्रह्म त्वत है और उसके दर्शन केवल आत्म तत्व से ही होतेहैं न कि चित्त से। श्वेताश्वतर उपनिषद में कहा हैं:—

यदात्म तत्वे नतु ब्रह्मतत्वं दीपोप मेनेह युक्तः प्रपश्येत्।
अजं ध्रुवं सर्व तत्वैर्विशुद्धं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्व पाशैः
न तस्य कार्य करणं च विद्यते न तत् समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकिं ज्ञान बल क्रिया च॥

:०:

मैं कौन हूं।

मैं कौन हूं? मैं जीवन हूं, किन्तु आत्मा हूं। मेरा संसार से कुछ सम्बन्ध नहीं। मुझको पूछनेवाला एक परम पुरुष है। मैं परब्रह्म परमात्मा का अंश हूं। इस के और मेरे अस्तित्व में कुछ भी भेद नहीं है। मैं सदैव प्रकाशमान परिपूर्ण हूं। मैं सबका उत्पादक परिपालक और संहारक हूं। जलाशय के जलमें, अंजली के जलमें, सीमा व्यतिरिक्त तत्व स्वभाव गुण शक्ति में कुछ भी भिन्नता नहीं। मैं अपने जीवन पोषक द्रव्य का नियमित आकर्षण करता हूं, जिस से मेरा शरीर और मानसिक बल खूब बढ़ रहा है। मुझमें सुख शान्ति का खूब भास हो रहा है। मैं अपने मानस स्वरूप का ईश्वर के रूप में रूपान्तर कर रहा हूं। अतएव मैं प्राणी मात्र को उदार भाव से देखता हूं। मैं सदैव प्रकाशको देख रहा हूं। मैं स्वयं प्रसन्न रहकर स

बको प्रसन्न कर रहा हूं। मैं नित्य हूं, आत्माराम हूं सुख मय हूं, अनिर्वेद हूं, उत्साहपूर्ण हूं, उन्नत हूं, सब को उन्नत कर रहा हूं। प्रेम कर रहा हूं। आनन्द मङ्गल कर रहा हूं। ईश्वरका भान करा रहा हूं। प्रेम पूजा भक्ति बढ़ा रहा हूं। शुभ प्रेरणा शुभाशीष मुझ में स्फुरण पाकर समानाकर्षण पद्धति द्वारा मुझ में विशेष संचित होते हैं। संचालित होते हैं सम्यक् प्रवाहित होते हैं मैं अत्यन्त शुद्धाचरणों और पवित्रता को अनुभव कर रहा हूं। मेरे भीतर से पवित्रतायें और भलाइयां बह रही हैं। प्रकाशका रूप धारण कर सबको प्रकाशन कर रही हैं। मैं सच्चिदानन्द स्वरूपका अपने निज रूपमें सम्मेलन कर रहा हुं। मेरा जठर बलवान, व उस की क्रिया बलवान परिणाम बलवान, भोजन का परिपाक रक्ताभिशरण संचार हो रहा है। मेरे शरीर पर किसी रोगका आक्रमण नहीं होता। मैं कभी वृद्ध नहीं होता हूं। मेरे शरीरमें कभी आलस्य नहीं आता कभी उदासीनता नहीं छाती मैं सत्य सङ्कल्प और सत्या

न्वित हूं, अजर हूं, अमर हूं, मैं बलवान, निरा मय, दृढ़ आग्रही, कार्य तत्पर हूं। सदा निर्भय, निः शङ्क हूं। शान्तिपूर्वक सुन्दर विचार करता हूं! विचा रों के सुन्दर चित्र बनाता हूं। उनकि चित्रावली बना के अपनी चित्तभित्ति पर लटकाता हूं। चित्र मुझमें अन्तर्हित होते हैं। विचारोंको चित्रोंमें कल्पनाके चित्र विचित्र रङ्ग भरे हुए हैं। उनमें प्रेम सम्वेदन, कोपका निर्वेदन, मधुरताका द्योतनभरा हुआ है। चित्रोंमें अनेक भावनाओंकी रेखायें अङ्कित होती हैं, विराम पाती हैं, विलीन होती हैं। विचार चित्र मुझे मो-हित कर रहे हैं। मुग्ध कर रहे हैं, स्तम्भित कर रहे हैं। विचारके चित्रोंमें से अग्नि वायु, आकाशका रूप प्रगट हो रहा है। विद्युत् की धारा बहरही है! वि-द्युत् कण चमक रहे हैं। मेरे रोम रोममें रक्तके कण कणमें उनका भान हो रहा है। मेरी सत्ता अमोघ है। मेरी आज्ञा अनुल्लंघ्य है, मेरा निश्चय दृढ़ है। मेरी आज्ञा प्रबल है। मेरी प्रतिभा अद्भुत है। मेरी कल्प-

ना विचित्र है। मेरा स्वभाव स्वतन्त्र है। मेरा हृदय पवित्र है, मेरा जीवन सुखमय हैं। मेरा व्यवहार सत्य है, विजय लक्ष्मी, जयपताका, धन समृद्धि मेरी दासी हैं। परीश्रम, प्रयत्न, उद्योग, यह मेरे दास्त हैं। सुख, शान्ति, आनन्द, उत्साह, आरोग्य वैभव पर मेरा अधिकार है। मैं सबका चालक द्योतक पालक हूं। मेरे अतिरिक्त परमाणु नहीं परमाणु के अतिरिक्त मैं नहीं। मैं सबका सम्राट् महाराजा धनी सबका मालिक हूं। मुझमें ईश्वर है। मैं ईश्वर में हूं। ईश्वर और मैं अभिन्न हूं। कर्त्तमकर्त्तु मन्यथा कर्त्तु शक्तिमान हूं, सबका प्रेरक भारवाहक सरक्षक हूं। मेरी आज्ञामें पंच भूत है। मेरी आज्ञामें चन्द्रसूर्य ग्रह नक्षत्र तारे हैं —

मयि अखण्ड सुखाम्बोधौ बहुधा विश्व वीचयः।
उत्पद्यन्ते विलीयन्ते माया मारुत विभ्रमात्॥

सब सङ्कल्प का ही अविष्कार है। जैसे सङ्कल्प किये जाते हैं वैसा ही उनका मूर्त्त स्वरूप बनकर जगत्को

स्थिति होति है। संकल्प ही जगत है। जैसा पुरुष संकल्प करता है वैसा ही वह स्वयं हो जाता है यथा:—

सति सक्तं नरो याति सद्भावं ह्येकनिष्ठया।
कीटको भ्रमरीं ध्यायन् भ्रमरत्वाय कल्पते॥

जैसे भ्रमरिका ध्यान करता कीट भ्रमरत्वको प्राप्त होता है वैसे ही एक निष्ठासे ब्रह्मका ध्यान करता पुरुष ब्रह्मत्वको प्राप्त होता है। अतएव हम सबको सावधान होकर बार बार ब्रह्म ही चिन्तन करना चाहिये। एक महात्माने कहा है:—

* सवैया *

जो मन नारीको ओर निहारत,
तो मन होत है ताहिको रूपा।
जो मन काहूसे क्रोध करे,
तब क्रोध मयी होजाय तद्रूपा॥
जो मन माया ही माया रटे नित,

तो मन डूबत मायाके कूपा ॥
सुन्दर जो मन ब्रह्म विचारत,
तो मन होत है ब्रह्म स्वरूपा ॥

जो मनुष्य श्रद्धा भक्तिसे नित्यप्रति इसका पाठ करेगा वह पापपुण्यसे इस प्रकार लिप्यमान नहीं हो सक ता जैसे कमलका पत्र जलसे। और वह स्वयं ब्रह्म रूप ही हो जायगा।

ज्ञानी का विनोद

कहते जिसे हैं ईश वह है मात्र मेरी भावना।
मैं ही न हूं तो होय किस से ईश की संभावना ॥
प्राणी अनेकों जाति के मेरे ही सब आकार हैं।
व्यापार लाखों प्राण के मेरे ही तो व्यापार हैं ॥ १ ॥
सर्वत्र मैं ही व्याप्त हूं क्यों विम्ब क्यों आभास हूं।
मैं दर्श दृष्टा दृश्य हूं मैं दूर मैं ही पास हूं ॥
सत् या असत् कुछ या न कुछ जो कुछ कि है मैं हूं सभी
हो दिव्य दृष्टि गुरु कृपा से दीखता हूं मैं तभी ॥२॥

मैं ही कहीं पर सूर्य हूं मैं ही कहीं अणु रूप हुं।
सागर बनु मैं ही कहीं कहीं मैं हीं बिन्दु स्वरूप हूं॥
हूं चर कहीं कहीं हूं अचर कहीं ज्ञान कहीं अज्ञान मैं।
संसार दृष्टि से छुपा आता नहीं हूं ध्यान में॥
मुझ गुप्त मणि को खान में जग दोख कर छुप जायहै।
हर एक पुरज़ा हो अलग तब यन्त्र नहीं कहलायहै॥
सब भेद तत्क्षण खुल गया पढ़ते ही आतम कीकथा।
जिस को समझता था बड़ा सो वास्तविक कुछ भीन था।
सच्चित् तथा आनन्द में छुप सागया था भूल से।
कहीं नाम में कहीं रूप में ढक जाय ज्यों रवि धूल से।
उतरी अविद्या राक्षसी अब आप को मैं जानता।
जैसे गले का हार त्यौं हीं प्राप्त प्राप्ति मानता॥ ५॥
जब बाह्य दृष्टि छुट के दृष्टि हुई अन्तर मुखी।
तब आप का मैंने लखा स्वच्छन्द सुखि से भी सुखी॥
एकान्त में बैठा हुआ भी वाक्य सुन कर धारता।
चुप चाप हूं जिह्वा बिना तोभी बचन उच्चारता॥६॥
मित्रो! कभी मत पूछना मैं जीव हूं या ईश्व हूं

मैं बन्ध मैं ही मोक्ष हूं मैं जीव मैं विश्वेश हूं ।
मैं बन्धता मैं ही बन्धू मैं छूटता मैं छोड़ ता ।
देता हूं उत्तर सर्व को नहीं मुख किसी से मोड़ता ॥ ७॥
ईश्वर बनूं ऐश्वर्य से सम्बन्ध कुछ रखता नहीं ।
हूं जीव पर जीवत्व पाओगे न तुम मुझ में कहीं ।
मैं बन्ध में बन्धता नहीं नहीं मोक्ष पाकर मुक्त हूं ।
मेरे किये हों कर्म सब नहीं कर्म से संयुक्त हूं ॥८॥
चलता बहुत ही हूं अहा ! फिर भी नहीं जाता कहीं
बनता बिगड़ता देखता बनता बिगड़ता हूं नहीं ।
मैं देख कर नहीं देखता हूं देखता नहिं दीखता ।
आश्चर्य की सीमा नहीं सब जान करके सीखता ॥९॥
मैं जान कर नहीं जानता खाऊं न कुछ खाऊं सभी ।
व्यापारि हूं सब से बड़ा व्यापार नहीं करता कभी ।
मैं हूं तथा हूं भी नहीं दोउ मध्य हूं मैं भासता ।
कौशल्य ! मुझ को जानता सो मैं ही होय प्रकाशता ॥

इस का नमुझ को ज्ञान था

नहिं देश मैं नहीं जीव ही नहीं ज्ञान नहिं अज्ञान था।
नहिं देव दानव नहिं पशु मनु की न मैं सन्तान था।
सब ही उपाधो से रहित आनन्द घन विज्ञान था।
आश्चर्य है! आश्चर्य! इस का न मुझ को ज्ञान था ॥१॥

अन्तः करण दर्पण अलौकिक मध्य मूरति मोहनी।
देखी महा आश्चर्य मय थी बिम्ब जिस की सोहनी
सुख दुख न इस में लेश था नहीं कुछ जगत का भान था
कारण न था नहिं कार्य ही इस का न मुझ को ज्ञान था
जग रूप अपना देख कर मैं आप ही भय मान था
था सर्प रस्सा कल्पना इस का न मुझ को ज्ञान था।
सब मैं ही अपना आप हूं मिथ्या याग वियोग है।
प्रीतम प्रिया का भाव कहं जब नित्य ही संयोग है।

यह भाव बनते थे तभी मैं जब तलक अंजान था।
थे मन गढत ये भाव सब इस का न मुझ को ज्ञान था
अन्तर बना कर आरसी जब रूप देखा आपना।

पाया उसे अत्यन्त निर्मल मिट गई सब कल्पना ।
मैला समझ मैं था दुःखी मिथ्या यह अनुमान था ।
हत्या लगी निष्पाप को इस का न मुझ को ज्ञान था ॥
किस भान्ति करिये योग युक्ती ब्रह्म बतलाता न था ।
है भेद क्या यह शास्तर भी कुछ भेद बतलाता न था ।
थी आड़ मेरे बीच जो मेरा ही वह अभिमान था ।
मन भूत था शिर पर चढ़ा इस का न मुझको ज्ञान था ॥
भूला स्वयं मैं आप को ऐसा महा मतिमन्द था ।
था जान कर अंजान में आखों सहित भी अन्ध था ।
घूमा अन्धेरे में बहुत अत्यन्त ही हैरान था ।
नहीं सूर्य छुपता धूल से इस का न मुझ को ज्ञान था ॥१॥
झुठे सलिल के हित दौड़ा किया प्यासा मरा ।
ढूंढा असत् में सत्य को कारज नहीं कुछ भी सरा ।
था मैं नशे में बावला यद्यपि गुण वान था ।
क्या कांच है क्या है मणी इस का न मुझ को ज्ञान था
करि धारणा पुनि ध्यान वर्षों योग के पीछे पड़ा ।
उपवास करि भूखों मरा तप में तपा जल में खड़ा ।

जब जब लड़ा तब तब गिरा यद्यपि महा बलवान था।
पंर्वत छुपा है राई में इस का न मुझ का ज्ञान था॥९॥
बहू काल पीछे गुरू कृपा कौशल ? जाना आप को
तब मर्म सारा खुल गया पाया न फिर संताप को।
मैं सत्य चित नित एक रस सर्वत्र पूर्ण समान था।
वहि ब्रह्म वहि मैं वहि जगत् इस का न मुझ को
ज्ञान था ॥१०॥

आत्म चिंतन।

सुख साध्य चिन्तन आत्म का,
सनकादि मुनि का इष्ट है।
तज आत्म जो विषयन भजे,
सो दुष्ट पाता कष्ट है।
सब भाव तज परमात्म भज,
यह ही परम पुरषार्थ है

आसक्ति भौतिक भाव में,
नर जन्म खोना व्यर्थ है ॥ १ ॥
इस के सिवा नहीं अन्य कोई,
मुक्ति का आधार है ।
शास्त्रों पुराणों वेद का,
उपदेश यह ही सार है ।
योगी यती मुनि सिद्ध गण,
सब का यही सिद्धान्त है ।
जो आत्म को नहीं भूलता,
वही सन्त है वही शान्त है ॥ २ ॥
संसार सागर तरण हित,
गुरु पद जिहाज बनाइये ।
वैराग्य अरु अभ्यास की,
सीढी बना चढ जाइये ।
मल्लाह सत्गुरु रूप पर,
विश्वास पूर्ण लाइये
तन मन बचन तिहूं अर्प कर,

भव सिन्धु से तर जाइये ॥ ३ ॥
जो मुढ नर अज्ञान वश,
घृत हेतु वारि बिलोवता ।
नहिं हाथ उस के आय कछु
आयुष्य यों ही खोवता ।
तिसे ही नर जो आत्म तजि,
अनआत्म में मन लावता ।
भटके अनेकों योनियों में,
दुःख अनेकों पावता ॥ ४ ॥
मति हीन कोई कीर्त्ति हित,
बहु पाप करि मरि जाय है ।
तप हेतु कोई मूर्ख जन,
निज देह व्यर्थ गलाय है ।
इस भान्ति नर अविचार से,
बहु कल्प कष्ट उठाय है ।
दिन रात दीजै दान बहु,
विधि लौट जग में आय हैं ।

काशी चिराओ शीश कुहो,
मृत्यु से नहिं पाइये।
बिन्दु ज्ञान अन्य उपाय से,
नहिं भय मरण का जाय है।
भय रूप का मिटता तभी,
जब रज्जु दृष्टि आय है।
हो लक्ष जिस को आत्म का,
नहिं काल उस को खाय है।
नहिं पाप पुण्य लगें उसे,
नहिं लेश दुःख उठाय है।
देवादि जोड़ें हाथ सब,
नहिं शत्रु से अपमान हो।
पाताल नभ जल थल जहां,
जावे तहां सन्मान हो ॥७॥
संकल्प जिस का सिद्ध हो,
फिर कार्य उस का क्यों रुके।
जिस को मिले चिन्तामणी,

सो निर्धनो क्यों हो सके।
नव निद्धि आठों सिद्धियां,
आगे खड़ी सेवें उसे ।
जो आप पूर्ण काम हो,
होवे कमी फिर क्या उसे ॥८॥
जो हो शरण विश्वेश की,
सो क्यों न पूर्ण काम हो।
जब रूप होवे राम का,
तब आप ही आराम हो ।
विश्वास नहिं विश्वेश का,
बहु कामना मन मांय हैं ।
हत भाग्य नर भव कूप गिर,
जन्में मरें पछितांय हैं ॥९॥
सब काम तज परमात्म भज,
कौशल्य जो सुख चाहता ।
बड़ पुण्य से नर तन मिला,
क्यों व्यर्थ इसे गमावता ।

जिस ने भजा परमात्म को,
वहि साधु है वहि सन्त है।
शूरा वहि पूरा वहि,
निर्भय वहि निश्चित है ॥ १० ॥

अवधूत का पन्थ।

द्विज पन्थ मेरा कुछ नहीं क्यों पन्थ मुझ से पूछता।
मैं आप ही जब मर मिटा तब पन्थ से क्या वास्ता।
जो लवण पानी में मिला सो लवण पानी हो गया।
अवधूत नहिं जब आप ही अवधूत का फिर पन्थ क्या।
जीते ही जी जब मर गया निर्णय हुवा मुझ को तभी।
हैं साध्य साधक एक ही, नहिं भेद इन में लेश भी।
माया रचित हैं पन्थ सब क्यों पन्थ का झगड़ा किया।
अवधूत नहिं जब आप ही अवधूत का फिर पन्थ क्या ॥२॥
सब पन्थ कल्पित एक में उस एक के ही जानिये।
झूठा न झगड़ा कीजिये अद्वैतता पहिचानिये।
तर्कें कुतर्कें त्याग दो अवधूत का मानो कहा।
अवधूत नहिं जब आप ही अवधूत का फिर पन्थ क्या। ३॥

इस लोक में नहिं काम कुछ परलोक की चिन्ता नहीं
सब ठौर मैं हि व्याप्त हूं आना न जाना है कहीं।
जिसने अपनापा खो दिया उसने सभी कुछ पा लिया
अवधूत नहिं जब आप ही अवधूत का फिर पन्थ क्या ॥४॥

संशय सभी जाते रहे जाता रहा जब मैं पना।
जो था अणु से विभु हुवा जो विन्दु था सिन्धु बना।
नहिं तू रह्या नहिं में रह्या जो सत्य था सो ही रह्या
अवधूत नहिं जब आप ही अवधूत का फिर पन्थ क्या॥५

मैं और हूं तू और है परदा हटा इस भेदका।
आंखें खुलें विज्ञान की तब अर्थ जाने वेद का।
है ब्रह्म वेत्ता ब्रह्म ही सब पन्थ से झूठा भया।
अवधूत नहिं जब आप ही अवधूत का फिर पन्थ क्या॥६॥

तू आप ही पुरुषार्थ कर क्यों दूसरे से बूझता।
अपना पराया भूल जा सन्मार्ग तत्क्षण सूझता।
सन्मार्ग जब निश्चय हुवा तब पन्थ पन्थाई गया।
अवधूत नहिं जब आप ही अवधूत का फिर पन्थ क्या॥७॥

इस मैं पने के दोष से आंखें न अन्धी कीजिये।

जो है प्रकाशक सर्व का उसको छुपा मत दीजिये
खोजा नहीं आपा कभी आयु वृथा ही खोदिया
अबधूत नहिं जब आप ही अबधूत का फिर पन्थ क्या ८
जोविष्णु भक्ति कीजिये विष्णु स्वयं बन जाइये।
दुर्गा तुम्हारी इष्ट है दुर्गा ही हो सुख पाइये।
शिव को भजो शिव रूप हो यह आदि मत नहिं है नया।
अबधूत नहिं जब आप ही अबधूत का फिर पन्थ क्या।९
सेवा हि जिस को इष्ट है वह इष्ट नहीं है दुष्ट है
सेवक बनादे आप सा वह इष्ट हमको इष्ट है।
कौशल्य मिथ्या शिष्य गुरु अवधूत है सत्भाषिया।
अबधूत नहिं जब आपही अबधूत का फिर पन्थ क्या १०

कविता ॥

यह कौन कहता है कि तू माता पिता से अन्य है।
सब कार्य कारण से परे निःसंग तू चैतन्य है।
इच्छा तुझे नहिं शोभती तू नित्य पूर्ण काम है।
नहिं लेश तुझ में मोह का निर्मोही तेरा नाम है ॥११॥
यह कौन कहता है कि तू अपवित्र है परतन्त्र है

पावन परम अवयव रहित अक्षर सदा निज तन्त्र है
भय क्यों किसी से मानता तू वस्तुतः स्वच्छन्द है।
दुःख को कहां है ढूंढता तू आप आनन्द कन्द है ॥२॥
यह कौन कहता है कि तू तो काल के है गाल में।
है काल का भी काल तू अविनाशी तीनों कालमें।
ये देश वस्तु काल अरु जो कुछ उदय या, अस्त हैं।
सब का अधिष्ठाता तुही तुझ में सभी अध्यस्त हैं ॥ ३ ॥
हैं शक्तियां तुझ में बहुत जिन को न संख्या होसके।
यह दृश्य है जो दीखता सब में हो तेरा राज है।
तेरे सिवा उन का कभी नहि पार कोई पा सके।
चिन्ता तुझे किस बात की तू सर्व का सिरताज है ॥४॥
जो आप को बुद् बुद् समझ कर ब्रह्म सागर जानता।
सो करि हो वृथा कल्पना दूजा समझ मम मानता।
अब खोल आंखें देखता नहि भेद रंचक पाप है।
पाना सिवा न मैं अन्य कुछ भी देखने में आय है ॥५॥
सागर तुही बुद् बुद तुही लहरें तुही बन आय है।
तू एक ही बहु रूपिये सम रूप बहु दिखलाय है।
अत्यन्त ही है पास तू फिर भी बहुत ही दूर है।

चर और अचर इस विश्व में सर्वत्र ही भर पूर है ॥६॥
मन इन्द्रियां अरु बुद्धि को लगता नहीं तेरा पता ।
उन सर्व से है तू परे उन को क्रिया को जानता ।
नहिं बन्ध थी तुझ में कभी नहिं मुक्त अब तू है भया ।
तू तो सदा ही मुक्त है धोका तुझे था हो गया ॥ ७॥
वादन अनिल चन्दा रवि भय मानि तेरा घूमते ।
यमराज तेरे दास हैं तव चरण सादर चूमते ।
ऋद्धि नहीं अब इष्ट है सिद्धि नहीं कुछ चाहिये ।
मिथ्या सभी तेरे सिवा क्यों चित को भटकाइये ॥ ८॥
तू जो उपासन तप करे क्या हाथ तेरे आयगा ।
है ध्येय ध्यानी एक ही क्या ध्यान से फल खायगा ।
ब्रह्मा तुही सृष्टी रचे विष्णु तुही जग पालता ।
तू ही भयंकर रुद्र बनकर विश्व को है घालता ॥ ९॥
या जिस किसी को ढूंढता सो है तुही मत खिन्न हो ।
दे ढूंढने को त्याग अब तू स्वस्थ चित्त प्रसन्न हो ।
ज्ञानी जिसे हैं जानते योगी जिसे हैं ध्यावते ।
कौशल्य सा है आप तू श्रुति सन्त कोविद गावते ॥१०॥

भगवद्भक्ति आश्रम रामपुरा (रेवाड़ी)

यह आश्रम रेवाड़ी जंक्शन से पश्चिम दिशा में लग भग एक कोस के अन्तर पर जंगल में अति पवित्र भूमि में बना है जल की सुविधा के लिये पांच कूप और एक तालाब है तालाब में पक्के घाट बनाये गए हैं। १०० बीघा भूमि में उप योगी वृक्ष लगा कर उपवन बनाया गया है। आश्रम से लगी हुई ६०० बीघा भूमि गौओं के चरने के लिए श्री ० लेफ्टीनेन्ट राव बहादुर राव बलबीर सिंह जी ने आश्रम को प्रदान की है।

इस आश्रम में एक ब्रह्मचर्याश्रम, कन्या पाठशाला वा अछूत पाठशाला और अतिथियों व सत्संगियों के ठहरने का स्थान व पुस्तकालय है। आश्रम में एक औषधालय भी है जहां से निकटवर्त्ती ग्रामों के रोगियों को मुफ़्त औषधी दी जाती है।

इस समय आश्रम में २५ ब्रह्मचारी हैं। यह प्राचीन ऋषियों की भांति गुरुजनों की सेवा व स्वाव-

सादेपन का जीवन व्यतीत करते हुये विद्योपार्जन करते हैं, इन का भोजन व रहन सहन इतना सादा है कि एक ब्रह्मचारी का समस्त खर्च ५ मासिक है। स्वावलम्बी इतने हैं कि इन्होंने एक ६५ फीट गहरा कूप स्वयं ही खोद लिया है; संस्कृत, देवनागरी, इत्यादि सब प्रकार की शिक्षा दी जाती है। व्याख्यान देना भी सिखाया जाता हैं।

कन्या पाठशाला— इन का जीवन भी बहुत। सादा व तप का बनाया जाता है संस्कृत देवनागरी, गणित की शिक्षा इन को दी जाती है रामायण व गीता इन के मुख्य ग्रन्थ हैं। अछूत पाठशाला में निकट वर्ती ग्रामों के बालक पढने आते हैं। अछूतों को आश्रम में रखने का विचार हो रहा है। पुस्तकालय आरम्भिक अवस्था में है। धार्मिक ग्रन्थों का साधारण संग्रह हुवा है, हां एकान्त शान्त स्थान के कारण यह छोटा पुस्तकालय भी बड़ा उपयोगी है। रामपुरा आश्रम की भांति दादरी गढी बोलनी औरैड़िया खेड़ा-

टास निकरी जूरगढ खोयरी पालम भटिण्डा आदि अन्य स्थानों में भी आश्रम खोले गये हैं।

उद्देश्य ॥

१. श्री भगवान् की भक्ति का प्रचार करना ।

२. गौ रक्षा और उस के लिये गोचर भूमि छुड़ाना।

३. जङ्गलों में वृक्ष लगवाना और उस के बीच में जलाशय बनवाना ।

४. शिक्षा का प्रचार करना जिस में मनुष्य मात्र विद्यालाभ कर सकें और प्राचीन प्रथा को फिर प्रचलित करना ।

५. बीमारियों के अवसर पर दवाई बांटना ।

६. आस पास के ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शांति और प्रेम बढ़ाना ।

७. सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जागृत करना ।

८. राजा और प्रजा सब का हित चिंतन करना ।

शब्द

तुही एक अनेक भयो है प्रभुजी अपनी इच्छा धार ॥टेक॥
तुही सिरजे तूही पाले तूही करे संहार ।
जित देखूं तित तूही तू है तेरा रूप अपार ॥१॥
तूही रामनारायण तूही तूही कृष्ण मुरार ।
साधों की रक्षा के कारण युग २ लै अवतार ॥२॥
तुही आदि अरु मध्य तुही है अन्त तेरो उजियार ।
दानव देव तुम ही से प्रकटे तीन लोक विस्तार ॥३॥
जल थल में व्यापक है तूही घट २ बोलन हार ।
तो बिन और कौन है ऐसो ज्यासों करूं पुकार ॥
तुही चतुर शिरोमणी प्रभु तुही पतित उधार ।
चरणदास सुखदेव तूही है जीवन प्राण अधार ॥५॥

शब्द

जिसको तू नरतन मानत यह आप रूप भगवान है टेक
अहंकार ने जब से घेरा कहन लगा मेरा और तेरा ।

भूल गया निज रूप अनेरा तू सर्वज्ञसुजान है ॥ १ ॥
मैं हूं देह देह है मेरी केवल यही भूल है तेरी ।
पांच तत्व की यह तो ढेरी जान क्यों भया अज्ञान है॥२॥
बुरी भली करनी जब करै है बन्धन में तभी तो पड़े है।
निष्क्रिय को नहीं कछु डर है तोहि कर्म की आन है॥३॥
सत् चित् आनंद भाव संभारो पांच क्लेशते होजा न्यारो।
नाम रूप कछु नांह निहारो यही तो निर्मल ज्ञान है॥४॥

शब्द

धर्म मत हारो रे जग में जिन्दगी दिन चार ॥ टेक ॥
अगम लोक मे चल कर आया, पल्ले खर्ची कुछ नहीं लाया।
यहां आकर गढ़ कट चिनाया यौंही जाता संसार ॥१॥
धर्मराज के जाना होगा, सारा हाल सुनाना होगा।
फिर पाछे पछताना होगा, कर लो ना सोच विचार॥२॥
अब तो चेत करो मेरे भाई, तैंने वृथा उमर गवाई।
तैं धंके काया लुटवाई, भज राम नाम है सार ॥३॥
बार बार सतगुरु समझावे, मिनखा जन्म बहुर नहीं पावे।
गया वक्त फिर हाथ न आवे, श्री स्वामी जी कहैं हरबार

ग़ज़ल

बने जो कुछ धर्म करले यही एक साथ जावेगा ।
गया अवसर न तेरे फिर यह हरगिज हाथ आवेगा ॥टेक॥
दिवाना बना के दुनियां में समय अनमोल खोता है ।
दिये लाखों की दौलत भी न पल रहने तु पावेगा ॥१॥
धरी रह जायगो तेरी अकड़ सारी ठिकाने पर ।
जब आके यम जकड़ गरदन पकड़कर धरा दबावेगा ॥२
कुटुम्ब परिवार सुत जोई सहायक होगा ना कोई ।
तेरे पापों की गठड़ी खुद तु ही सिर पर उठावेगा ॥३
गर्भ में था कहा तूने न भूलूंगा प्रभु तुझ को ।
भला तू जायके अपना उसे क्या मुंह दिखावेगा ॥४॥
तुझे तो घर से जंगल में तेरा ही खुद बखुद बेटा ।
सुला कर लकड़ियों के ढेर पर तुझ को जलावेगा ॥५॥
कहैं कबीर समझाई तू कहना मान ले भाई ।
नहीं तो अपनी ठकुराई वृथा सारी गंवावेगा ॥३॥

शब्द

धर्म पर हट जाना कोई बड़ी बात नहीं है ॥ टेक ॥

धर्म पर डटे हरिश्चन्द्र दानी सत पर छोड़ दई रजधानी
बिके राहतास कंवर और रानी बिके तो बिक जाना ।
राजा मोरधज था भक्त प्यारा लड़का गल बिन धर
दिया आरा ।
रानी ने नहीं आधू डारा मरे तो मर जाना ॥२॥
यह शरीर फेर मिल जावे पर फिर धर्म हाथ नहीं
आवे ।
क्यों तू वृथा जन्म गंवावे फेर हो पछताना ॥३॥
राजा रामचन्द्र सतधारी संग में ले लई जनक दुलारी
लछमन ने भी कर लई त्यारी वनों के मध जाना ॥४॥

अथ पंच भ्रम निवर्त्तक दृष्टान्त पंचकम् ।

"जीवात्मा परमेश्वराद्भिन्नः" जीवात्मा परमेश्वर से भिन्न है ।

"एकात्मनि प्रतीयमानं कर्तृत्वादि वास्तवम्" आत्मा में प्रतीत होता हुवा कर्तृत्व आदि वास्तविक सिद्धान्त ही है ।

"शरीर त्रयावच्छिन्नात्मा सङ्गी" तीनों शरीरों से अवच्छिन्न युक्त हुवा आत्मा संग वाला है।

"जगत् कारणत्वेन ब्रह्मणो विकारित्वम्" जगत् का कारण होने से ब्रह्म के विकार भाव हैं।

"कारणाद्भिन्नस्य प्रपञ्चस्य सत्यत्वम्" कारण से भिन्न हुवा प्रपंच जगत् को भी सत्य पना है ऐसे यह पांच भ्रम कहलाते हैं॥

"बिम्ब प्रतिबिम्ब दृष्टान्तेन भेद भ्रमो निवर्तनीयः" बिम्ब प्रतिबिम्ब के दृष्टान्त करके भेद भ्रम निवर्त करना चाहिये। जैसे सूर्य के बिम्ब से जल में गिरा हुता प्रतिबिम्ब भिन्न नहीं है ऐसे भेद भ्रम दूर करना।

"स्फटिक लोहित दृष्टान्तेन पारमार्थिक कर्तृत्व भ्रमो निवर्तनीयः" मणि में अर्थात् कांच में जैसे दूसरी वस्तु का लाल रङ्ग दीखता है इस दृष्टान्त करके आत्मा का कर्त्ता पन भ्रम दूर करना।

"सूर्योपरागोदकादर्श दृष्टान्तेन विकारित्व

भ्रमो निवर्तनीयः" जैसे सूर्य को और अग्नि को उत्पन्न करने वाला शीशा चकमक इन दोनों के योग से अग्नि उत्पन्न करता है तहां सूर्य कारण है सो विकार रहित है विकारवान शीशा ही है ऐसे माया ही विकार वाली है इस दृष्टान्त करके विकारित्व भ्रम दूर करना।

"घटाकाश दृष्टान्तेन संगीति भ्रमो निवर्तनीयः" जैसे घट के आकाश में महाकाश बन्धा नहीं है इस घटाकाश दृष्टान्त करके संगी संगपने का भ्रम दूर करना।

"स्वर्ण कटक लौह खड्गादि दृष्टान्तेन कारणाद्भिन्नत्वेन प्रतीयमान् प्रंपचस्य सत्यत्व भ्रमो निवर्तनीयः" स्वर्ण के कुण्डल लोहे तलवार जैसे सोना लोहे से भिन्न सत्य नहीं है प्रत्युत सोना लोहा रूप ही है इस दृष्टान्त करके कारण से भिन्न पना करके प्रतीत होते हुवे जगत् का सत्यत्व सत्य पने का भ्रम निवर्तन करना।

इति पंच भ्रम निवर्तक दृष्टान्त पंचकम् ॥

"भक्तिप्रेस" भगवद्भक्ति आश्रमरामपुरा रेवाड़ी में
भूमानन्द ब्रह्मचरी के प्रबन्ध से छपी।